मानवीय क्रियाकलापों में नैतिकता का निर्धारक
(Determinants of Ethics in Human Actions)

नीतिशास्त्र की मुख्य समस्या है- सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले सामान्य मानव के ऐच्छिक कर्मों का मूल्यांकन करना अर्थात् उन्हें उचित-अनुचित, अच्छा-बुरा आदि के रूप में निर्धारित करना। मानवीय कर्मों के उचित या अनुचित के रूप में निर्धारण हेतु एक आदर्श या मापदंड की आवश्यकता होती है। इस रूप में आचारशास्त्र की मुख्य समस्या उन नैतिक आदर्शों और मापदंडों की खोज एवं स्थापना करना है, जिसके आधार पर मानवीय कर्मों का नैतिक मूल्यांकन (उचित-अनुचित के रूप में निर्णय) हो सके। ऐसी स्थिति में नैतिक मापदंड उस तुला या कसौटी के समान है जिस पर विभिन्न कर्मों को तौलकर या कस कर उचित या अनुचित के रूप में निर्धारित किया जाता है। जो कर्म उस आदर्श या मापदंड के अनुकूल होते हैं उन्हें उचित और जो इसके विपरीत होते हैं उन्हें अनुचित माना जाता है।

नैतिकता के निर्धारक की विवेचना इसलिए आवश्यक है ताकि यह पता चल सके कि किसी परिस्थिति विशेष में हमें क्या करना चाहिए? नीतिशास्त्रीय विवेचना से अनुचित और उचित के निर्धारण का सम्यक् बोध हो जाता है।

नैतिकता के निर्धारक की चर्चा इसलिए भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है क्योंकि उत्तर-आधुनिकतावाद के उभार ने निरपेक्ष सत् एवं निरपेक्ष नैतिक मानदंड तथा सार्वभौम नैतिकता का खंडन कर दिया। ऐसी स्थिति में स्वभावत: यह प्रश्न उभरता है कि आखिर किसी विशेष परिस्थिति में किये गये कर्म के औचित्य का निर्धारण कैसे किया जाये? किन आधारों पर किया जाये और क्यों किया जाये?

निर्धारक: वे आधार (मानदंड और मानक) जिसके आधार पर कर्मों या निर्णयों का मूल्यांकन किया जाता है अर्थात् उन्हें उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ आदि रूपों में निर्धारित किया जाता है।

नैतिकता के निर्धारण के विभिन्न पक्ष (आयाम): नीतिशास्त्र के अंतर्गत नैतिकता के निर्धारण हेतु विभिन्न मानदंडों की चर्चा की गई है। इन निर्धारकों को विभिन्न भागों में बांटकर देख सकते हैं-

धर्म सापेक्ष नैतिकता या धर्म नैतिकता का निर्धारक है

धर्म सापेक्ष नैतिकता के अनुसार नैतिकता का मूल स्रोत और उद्गम स्थल, आधार या मानदंड धर्म है। इसके अनुसार धर्मग्रंथ एवं धर्माचार्य ही नैतिकता के मानदंड है अर्थात् इनके अनुसार किया गया कर्म उचित है और इसके विपरीत कर्म अनुचित है। इस मत के अनुसार जिस प्रकार बीज को अंकुरित एवं विकसित होने के लिए जल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार नैतिकता हेतु धर्म आवश्यक है। धर्मविहीन नैतिकता वास्तव में नैतिकता न होकर अनैतिकता है। यहाँ यह माना गया है कि कोई वस्तु या कर्म अपने आप में शुभ या औचित्यपूर्ण नहीं है बल्कि ईश्वर जिसकी इच्छा करता है वहीं शुभ हो जाता है। ईश्वर और धर्म से पृथक कुछ भी अपने आप में शुभ या नैतिक नहीं है। चूंकि ईश्वर स्वयं को धर्मग्रंथों या संतों, महात्माओं या पैगम्बरों आदि के रूप में प्रकाशित करता है। अत: इनके कथन और वचन भी नैतिकता के आधार बन जाते हैं।

धर्म सापेक्ष नैतिकता या धर्म नैतिकता का निर्धारक है, के समर्थन में तर्क

1. धर्म नैतिकता को उचित दिशा प्रदान कर उसे पथभ्रष्ट होने से बचाता है। आशय है कि जब जीवन में उचित-अनुचित के निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न होती है तो वैसी स्थिति में धर्म उनकी मदद करता है।
2. धर्म नैतिक जीवन के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करता है। यह हमें विश्वास दिलाता है कि अंतत: सत्य की ही विजय होगी। परिणामस्वरूप व्यक्ति सदैव सद्कर्मों के संपादन में लगा रहता है। धर्म के अभाव में व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थों के दलदल में फंस सकता है।
3. यदि नैतिक नियमों को ईश्वरीय आदेश के रूप में स्वीकार न किया जाये तो उन नियमों का सरलता से उल्लंघन किया जा सकता है, क्योंकि तब उनके उल्लंघन की स्थिति में ईश्वरीय दंड का भय नहीं होगा।
4. धर्म में ही नैतिकता अपनी पूर्णता में साकारित होती है। धर्म के अभाव में नैतिकता के स्तर पर आदर्श एवं वास्तविकता की खाई सदैव बनी रहती है। परंतु जब धर्म के अंतर्गत चरम स्थिति (जीवन मुक्ति आदि) की प्राप्ति होती है तो फिर समस्त नैतिक सद्गुण अपनी पूर्णता में साकारित हो जाते हैं।

पंथ निरपेक्ष नैतिकता (Secular Morality) *के समर्थन में तर्क*

1. धार्मिक नैतिकता मनुष्य को परलोक मुखी बनाता है। यह जीवन में भाग्यवादिता को बढ़ावा देता है। अतः नैतिकता को धर्म से पृथक करना आवश्यक है।
2. विश्व के विभिन्न धर्म अलग-अलग नियम निर्देशित करते हैं जिनमें परस्पर अंतर्विरोध है। ऐसी स्थिति में धर्म को अगर नैतिकता का आधार माना जाये तो फिर नैतिकता के पालन में भी विरोधाभास उत्पन्न होगा। साथ ही नैतिकता की एकरूपता और सार्वभौमिकता की व्याख्या नहीं हो पायेगी।
3. कार्ल मार्क्स के अनुसार धर्म अफीम के समान है। यह पूंजीपतियों द्वारा गरीबों के शोषण का साधन है। धर्म गरीब को गरीबी के वास्तविक कारण का पता नहीं चलने देता। धर्म गरीब को गरीबी में ही संतुष्टि प्रदान करने लगता है।
4. सिगमंड फ्रायड के अनुसार नैतिकता को धर्म से पृथक करना आवश्यक है क्योंकि धर्म सदैव पौराणिक मिथकों पर आधारित होता है जिसे वैज्ञानिक ढंग से सत्यापित नहीं किया जा सकता। जब ईश्वर की स्थिति ही संदेहात्मक है तो फिर उस पर आधारित नैतिकता पर भी प्रश्न चिह्न उत्पन्न हो जाता है।
5. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यमान धर्मों का रूप विकृति हो गया है। विभिन्न धर्मों का बाह्य पक्ष (मंदिर, मस्जिद आदि) या कर्मकांडीय पक्ष प्रमुख भूमिका में है। विभिन्न धर्मों के मूल तत्व दया, करूणा, प्रेम, त्याग आदि शिथिल हो गये हैं। कर्मकांडीय पक्षों को लेकर विभिन्न धर्मों में भिन्नता है। परिणामस्वरूप विभिन्न धर्मों के कारण वैश्विक स्तर पर कट्टरता, सांप्रदायिकता, अलगाववाद, परस्पर अविश्वास, धर्म आधारित हिंसा को बढ़ावा मिला है। ऐसी स्थिति में नैतिकता को धर्म से अलग करना अनिवार्य है।
6. नैतिकता को धर्म से पृथक करना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि कई बार अनुचित कर्मों को भी धर्म से जोड़कर उन्हें महत्व एवं मान्यता प्रदान कर दी जाती है। अतः हम वर्तमान परिस्थितियों में धर्मनिरपेक्ष नैतिकता का ही समर्थन करेंगे।

प्रश्नः *यदि नैतिकता को धर्म से पृथक किया जाये तो फिर नैतिकता के निर्धारण का आधार क्या होगा?*

1. परिणाम सापेक्ष नैतिकता (बाह्य आधार)
2. प्रवृत्ति और अभिप्राय (आंतरिक आधार)
3. सामाजिक नियम (समाजीकरण, सामाजिक संस्थाएँ आदि)
4. राजकीय कानून
5. महान नेताओं, सुधारकों एवं प्रशासकों के जीवन एवं उपदेश (महाजनो येन गतः स पन्थाः)
6. साधन एवं साध्य संबंधी आधार (गांधी बनाम मार्क्स)
7. कांट का नैतिक दर्शन
8. आचार संहिता और नीतिपरक आचार संहिता
9. नारीवादी स्थिति
10. पर्यावरणीय नीतिशास्त्र
11. नैतिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में विधि, नियम, विनियम (Regulations) तथा अंतर्रात्मा (Conscience)

सामाजिक नियम नैतिकता का निर्धारक है

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का एक अंग है। वह समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक नियमों को सीखता है। ये सामाजिक नियम एवं आदेश ही नैतिकता के निर्धारण के मानदंड हैं। दूसरे शब्दों में सामाजिक नियम के अनुरूप कर्म उचित है इनके विपरीत कर्म अनुचित है।

समाजीकरण सामाजिक गुणों, रीति-रिवाजों एवं नियमों को सीखने की एक प्रक्रिया है। समाजीकरण की इसी प्रक्रिया में व्यक्ति समाज अनुमोदित व्यवहारों, प्रतिमानों (मानदंडों) एवं मूल्यों की सीखता है और इन्हीं के आधार पर 'क्या अच्छा है और क्या बुरा है' का निर्धारण करता है।

आलोचना

1. सामाजिक नियमों में भिन्नता दिखाई देती है, उनमें कालांतर में परिवर्तन होता है। साथ ही कई बार उनमें परस्पर विरोध की स्थिति भी उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में उन्हें नैतिकता का मानदंड मानने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

2. सामाजिक नियमों को नैतिकता का एकमात्र मानदंड मानने पर सामाजिक उत्थान में बाधा होगी। समाज में कई रूढ़िवादी मान्यताओं एवं कुरीतियों का प्रचलन होता है। इनका विरोध करने पर यातनाओं एवं विरोधों को झेलना पड़ता है। समाज अपने पुराने रीति-रिवाजों को आसानी से नहीं छोड़ता हैं। अत: वैसे रीति-रिवाज जो समाज हित में बाधक हैं उन्हें दूर करने में कठिनाई उत्पन्न होती हैं जैसे- बाल विवाह, खाप पंचायतों का निर्णय, ऑनर किलिंग की बात।

स्पष्ट है कि सामाजिक नियम को नैतिकता के एकमात्र निर्धारक के रूप में स्वीकार करना विवेकपूर्ण नहीं है।

नैतिकता के निर्धारक के रूप में राजकीय नियम

इसके अनुसार राज्य द्वारा निर्मित नियम ही नैतिकता के मानदंड हैं अर्थात् मनुष्यों के कर्तव्य एवं अकर्तव्य के निर्धारण का आधार राजकीय कानून है।

तर्क: राज्य सर्वोच्च एवं निरपेक्ष सत्ता है जो किसी अन्य सत्ता पर आश्रित नहीं है। इसलिए राज्य आचरण संबंधी जो नियम बनाता है वही नैतिकता का मानदंड है। राज्य दंड के भय एवं प्रलोभन के माध्यम से जनसामान्य को नैतिक कर्म करने के लिए बाध्य करता है।

हीगल के अनुसार राज्य नैतिकता का मूर्त रूप है। अत: मानव जीवन में नैतिक लक्ष्य की सिद्धि हेतु राज्य के नियम का अनुपालन अपरिहार्य है।

समस्या

1. राज्य के नियम व्यक्तियों पर बाहर से आरोपित होते हैं। इससे 'करना चाहिए' की भावना का उदय नहीं होता। साथ ही इससे मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता पर प्रहार होता है।
2. राज्य के नियमों को दंड के भय एवं पुरस्कार के लोभ के माध्यम से पालन कराया जाता है। गांधी मतानुसार इससे व्यक्ति में नैतिकता का स्वाभाविक विकास नहीं हो पाता।
3. कई बार कानून पुराने, गैरजरूरी और अप्रासंगिक हो जाते हैं। ऐसे कानूनों के आधार पर सही-गलत का निर्धारण करना न्याय का समुचित आधार नहीं हो सकता। यही कारण है कि आजादी के अमृत महोत्सव काल में भारत सरकार ने औपनिवेशिक मानसिकता के प्रतीक कानूनों को हटाने को निर्णय लिया है। उल्लेखनीय है कि 1 जुलाई 2024 से देश में क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम में बदलाव करते हुए, अंग्रेजों के द्वारा बनाये गये आपराधिक कानूनों के स्थान पर नये कानूनों को लागू कर दिया गया है।
   1. भारतीय दण्ड संहिता (IPC) के स्थान पर भारतीय न्याय संहिता (BNS),
   2. क्रिमिनल प्रोसिजर कोड (CrPC) के स्थान पर भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS),
   3. इण्डियन एविडेन्स एक्ट के स्थान पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम (BSA) लागू हो गये हैं।
4. कभी-कभी जल्दबाजी में निरंकुश दंड प्रावधान बना दिए जाते है। इससे इनके दुरूपयोग की संभावना बढ़ जाती है। कानून का उद्देश्य केवल लोगों को सजा देना नहीं बल्कि समाज की कठिनाई को दूर करना भी है।

राजकीय नियम यद्यपि नैतिकता की रक्षा एवं प्रोत्साहन में सहायक हो सकते हैं परंतु उन्हें नैतिकता के एकमात्र निर्धारक के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम इनमें से किसी को भी निरपेक्ष रूप से नैतिकता के एकमात्र निर्धारक के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

अंत:प्रज्ञा (Intuition) नैतिकता के निर्धारक के रूप में

अंत:प्रज्ञावाद वह नैतिक सिद्धांत है जिसके अनुसार मनुष्य के अंदर अंत:प्रज्ञा नामक एक ऐसी शक्ति विद्यमान है जो किसी कर्म के उचित या अनुचित होने का साक्षात् ज्ञान परिणाम पर विचार किए बिना ही प्राप्त कर लेती है। इसके अनुसार कर्मों का औचित्य एवं अनौचित्य उनके परिणाम या उद्देश्य पर निर्भर नहीं करता। जिस प्रकार भौतिक गुण भौतिक वस्तुओं में अंतर्निहित होते हैं, उसी

प्रकार नैतिक गुण कर्मों में ही अंतर्निहित होते हैं। इस रूप में कर्म स्वत: उचित या अनुचित होते हैं। अंत:प्रज्ञा को स्वत: एवं साक्षात् रूप से यह ज्ञान हो जाता है कि सत्य बोलना उचित है। इसके लिए किसी तर्क या प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। स्पष्ट है कि अंत:प्रज्ञा द्वारा निर्दिष्ट कर्म उचित है और विपरीत कर्म अनुचित है। इस प्रकार अंत: प्रज्ञावाद के अनुसार अंत:करण या अंत:प्रज्ञा ही नैतिकता का मापदंड है।

कांट के अनुसार अंत:करण व्यावहारिक बुद्धि है और इसके नियम ही नैतिक मापदंड है।

आलोचना

1. अंत: प्रज्ञा व्यक्तिनिष्ठ है। अत: इसके द्वारा वस्तुनिष्ठ नैतिक नियमों का निर्माण संभव नहीं हो पाएगा।
2. कर्म के परिणाम, उद्देश्य एवं उद्देश्य प्राप्ति के साधन पर विचार किये बिना ही नैतिक निर्णय देना युक्तिसंगत नहीं है। अगर परिणाम को नैतिक कर्मों के मूल्यांकन का आधार न माना जाय तो फिर अच्छे और बुरे कर्मों में भेद का आधार समाप्त होने लगता है, वस्तुत: किसी कर्म को उचित कर्म के रूप में निर्धारित करते समय मानव हित को ध्यान में रखना आवश्यक है।
3. अंत: प्रज्ञा के नियम सार्वभौम (Universal) नहीं होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों एवं युगों में इनमें परिवर्तन संभव है।

निष्कर्ष: स्पष्ट है कि अंत: प्रज्ञा को नैतिकता के निर्धारण का एकमात्र आधार स्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रयोजनवादी नैतिक सिद्धांत

प्रयोजनवादी नैतिक सिद्धांत वे हैं जिसमें किसी उद्देश्य, परिणाम या लक्ष्य के आधार पर नैतिक कर्मों को उचित या अनुचित के रूप में निर्धारित किया जाता है। इस रूप में यहाँ जीवन के चरम लक्ष्य को ही नैतिक मापदंड माना जाता है। जैसे सुखवाद, आत्मपूर्णतावाद आदि।

साधन-साध्य विवाद

साधन-साध्य संबंध के संदर्भ में दो मुख्य पक्ष उभरते हैं-

1. क्या उन कर्मों को नैतिक दृष्टिकोण से उचित कहा जाय जिनका लक्ष्य या उद्देश्य तो उचित है पर वे अपने आप में मानवीय मूल्यों के विपरीत या अनैतिक हैं। दूसरे शब्दों में क्या यह माना जाय की साध्य की अच्छाई से साधन की पवित्रता निर्धारित हो जाती है। जैसे- अंत भला तो सब भला। जैसे- समानता रूपी सामाजिक, राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हिंसात्मक कार्यों का भी समर्थन करना। इसका समर्थन मार्क्सवाद, फासीवाद में है।

   मार्क्स, नाजीवादी एवं फासीवादी यह मानते हैं कि ***साध्य साधन के औचित्य को निर्धारित करता है।*** **(End justify the Means)** इनके अनुसार यदि साध्य उचित है तो उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन का प्रयोग गलत नहीं है। जैसे मार्क्स ने साम्यवाद की स्थापना को साध्य माना तथा इसकी स्थापना के लिए किसी भी साधन को काम में लाना उचित माना। जैसे हिंसात्मक क्रांति।

2. क्या वही कर्म नैतिक है जिसका उद्देश्य शुभ है तथा वह कर्म स्वयं में भी पवित्र हो अर्थात् साध्य के साथ-साथ साधन भी पवित्र हो? कहा भी जाता है *'जैसी करनी वैसी भरनी', 'जो जैसा बोएगा वैसा काटेगा'।*

गांधी, बिनोवा भावे, लियो टॉल्सटॉय आदि साधन और साध्य दोनों की श्रेष्ठता एवं पवित्रता की बात करते हैं। इनके अनुसार साधन और साध्य में अवियोज्य संबंध है। साध्य की प्रकृति साधन की प्रकृति से निर्धारित होती है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलु है। अगर साधन अनैतिक है तो साध्य अपने अंतिम रूप में पथभ्रष्ट होने से नहीं बच सकता। इनके अनुसार जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी।

गांधी के अनुसार *'साधन बीज है साध्य वृक्ष है'* यदि बीज में कोई दोष है तो वृक्ष में भी कठिनाई होगी। यही कारण है कि गांधी साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधन की पवित्रता को भी स्वीकार करते हैं। गाँधी मतानुसार सत्य साध्य है और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन है। विनोबा भावे ने भी आर्थिक और सामाजिक क्रांति के उद्देश्य से सत्य और अहिंसा को स्वीकार किया था। *गाँधी के अनुसार-* उत्पादन के साधन ऐसे हों जिससे सतत् विकास हो सके ताकि प्रकृति एवं वर्तमान मनुष्य तथा भावी पीढ़ी को सुरक्षित रखा जा सके।

गांधी मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु नैतिक नियमों के पालन की बात करते हैं। यहां नैतिक नियमों को 'व्रत' कहा गया है। यहां **एकादश व्रत** की बात की गई है। ये हैं-

1. सत्य
2. अहिंसा
3. अस्तेय
4. अपरिग्रह
5. ब्रह्मचर्य
6. शारीरिक श्रम
7. सर्वधर्म समभाव
8. स्वदेशी
9. अस्वाद
10. अस्पृश्यता निवारण
11. निर्भीकता या अभय

भारतीय दर्शन में नैतिकता के निर्धारक

1. **चार्वाकः** चार्वाक मतानुसार वह कर्म उचित है जिससे अपने अधिकतम शारीरिक सुख की प्राप्ति हो।
2. **अन्य भारतीय दर्शनः** मोक्ष, कैवल्य या निर्वाण ही जीवन का चरम आध्यात्मिक लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक कर्म उचित है जबकि बाधक कर्म अनुचित है।
3. **गीताः** गीता में स्वधर्म की अवधारणा है। गीता मतानुसार वर्ण एवं आश्रम के अनुसार वर्णित कर्मों को ही निष्काम भाव से पालन करना स्वधर्म है। इस रूप में स्वधर्म ही नैतिकता का निर्धारक है।

वर्तमान युग में जबकि लोग अपने कर्तव्यों को भूलकर अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं वैसी स्थिति में गीता द्वारा कर्तव्यों के पालन का आदेश प्रासंगिक है।

आपद धर्मः अवसर विशेष पर या प्रतिकूल स्थिति में, यदि उद्देश्य या प्रयोजन ठीक हो तो फिर गलत कर्म को करने की अनुमति दी जा सकती है। जैसे निर्दोष व्यक्ति की जान बचाने हेतु झूठ बोलना।

नैतिकता के निर्धारण के मुख्य आधार

सामाज में रहने वाले सामान्य मानव के ऐच्छिक कर्मों का उचित और अनुचित के रूप में निर्धारण करना एक जटिल प्रक्रिया है। नैतिकता के निर्धारण का कोई एक निरपेक्ष आधार नहीं माना जा सकता। नैतिकता के निर्धारण के क्रम में निम्नलिखित पक्षों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. कर्म का परिणाम
2. कार्य करने की परिस्थिति
3. कर्त्ता की भावना या उद्देश्य
4. कर्म का स्वरूप
5. नियम और कानून की स्थिति

किसी कर्म के नैतिक या अनैतिक के निर्धारण के क्रम में हमें कर्म के स्वरूप कर्त्ता की भावना एवं उद्देश्य, कार्य करने की परिस्थिति तथा कर्म के परिणाम के साथ-साथ नियम और कानून को ध्यान में रखना आवश्यक है।

नैतिकता के निर्धारण के क्रम में तीन आयाम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. **कर्म का विषय एवं परिणाम *(Object and impact of the act)*:** नैतिक रूप से अच्छे कर्म के लिए कर्म के विषय एवं परिणाम का अच्छा होना आवश्यक है।
2. **कार्य करने की परिस्थिति *(The circumstances surrounding the act)*:** मनुष्य के सभी कर्म किसी विशेष स्थान, काल या परिस्थिति विशेष में होते हैं। अतः किसी मानवीय कर्म का नैतिक मूल्यांकन (उचित या अनुचित) करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कर्म किन परिस्थितियों में किया गया। जैसे- किसी निर्दोष व्यक्ति के जीवन की रक्षा हेतु झूठ बोलना।

3. **प्रयोजन या उद्देश्य** ***(Purpose or intention)*:** कर्मों का मूल्यांकन करते वक्त कर्त्ता के उद्देश्य या मंतव्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

4. **कर्म का स्वरूप :** कुछ कर्मों का विषय ऐसा होता है कि वे स्वरूपतः नैतिक या अनैतिक कर्मों की श्रेणी में आ जाते हैं। जैसे- यौन उत्पीड़न अनुचित है, भूखे व्यक्ति को खाना खिलाना उचित है।

5. **नियम और कानून :** किसी कर्म के उचित या अनुचित के निर्धारण के क्रम में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वे कर्म नियम और कानून के अनुरूप हैं।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR